Bodhi-Path Year 2019 January Issue Volume 16 Page No 10 -16

तिब्बत में बौद्ध धर्म की साक्या परम्परा

प्रोफेसर विजय कुमार सिंह,
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

साक्या परम्परा का मूल भारतीय बौद्ध धर्म में दिखता है। भारतीय परम्परा के सिद्ध विरूपाक्ष (विरूपा) को इनका 'आदिपुरुष' कहा जा सकता है। यों तिब्बत में साक्या परम्परा खोन परिवार से सम्बन्धित है। पाँच विद्वानों के समूह को साक्या परम्परा को आरम्भ करने का श्रेय जाता है। ये हैं– कुन्गा–ञीङ्–पो (1092–1198), सोनम–त्छे–मो (1142–1182), जेत्सुन–डाग–पा–ग्यात्सेन (1147–1216), साक्या पण्डित(1182–1251) और डो–गेन–छोस–ग्याल–फाग–पा (1235–1280)। उपर्युक्त पाँचों लामाओं में से पहले कुन्गा–ञीङ्–पो, कोन–छोग–ग्याल–पो के पौत्र थे। कोन–छोग–ग्याल–पो का काल 1034–1102 था और उन्होंने 1073 में साक्या विहार की स्थापना की थी। यह साक्या विहार शिगात्से में 'पोन–पो–री' पहाड़ियों पर था। इन पहाड़ियों के आस–पास धूसर वर्ण की घास होने के कारण नामकरण साक्या हुआ। तिब्बती भाषा में 'सा' का अर्थ धरती और 'क्या' का अर्थ धूसर होता है जो वहाँ की मृदा और उस पर उगी घास का वर्ण है। साक्या के संस्थापक आदिपुरुष कोन–छोग–ग्यालपो के बारे में कहा जाता है कि उनकी शिक्षा–दीक्षा भारत के वर्तमान भागलपुर के मन्दार पहाड़ियों में स्थित विक्रमशीला महाविहार में सिद्ध नरो–पा (नड़पाद), रत्नाकरसिद्धि और वागीश्वरकीर्ति आदि गुरुओं के अन्तर्गत हुई थी। तथागत द्वारा मञ्जुश्रीमूलकल्प में त्सांग प्रदेश स्थित पोन–पो–री पहाड़ियों पर साक्या विहार की स्थापना की भविष्यवाणी की गई है।

साक्या शिक्षाएँ

लाम–डे अर्थात् मार्गफल शीर्षक से अभिहित साक्या परम्परा की शिक्षाएँ वज्रयान की शिक्षाओं से गुँथी हुई प्रतीत होती हैं। सिद्ध–परम्परा में दीक्षित होने के कारण इनकी शिक्षाओं में तन्त्र की अधिकता है। लाम–डे परम्परा में 18 प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनमें से हेवज्रतन्त्र प्रमुख है। शास्त्रार्थ के प्रमुख विषयों में प्रज्ञापारमिता, विनय, नागार्जुन द्वारा स्थापित माध्यमिक (शून्यवाद) और प्रमाण इत्यादि हैं। साक्या परम्परा में प्रसिद्ध छोस–ग्याल–फाग–पा (1235–1280) हुए हैं जिन्होंने मंगोल शासकों की सहायता से तिब्बत पर एकछत्र शासन किया था। इन्हें हम जर्मनी का बिस्मार्क अथवा इटली का मुसोलिनी भी कह सकते हैं क्योंकि ये छोस–ग्याल–फाग–पा ही थे जिन्होंने अनेक छोटे–छोटे राज्यों में बंटे तिब्बत का एकीकरण किया। साक्या लामाओं ने तिब्बत पर लगभग 90 वर्षों तक शासन किया। छोस–ग्याल–फाग–पा रिश्ते में साक्या पण्डित के नाम से प्रसिद्ध कुंगा–ग्यालत्सेन के भतीजे थे। कुंगा–ग्यालत्सेन ने ही प्रसिद्ध ग्रन्थ साक्या लेग–शद की रचना की है जिसे बौद्ध साहित्य में सुभाषितानि कहा जा सकता है।

लाम–डे (मार्गफल शिक्षाएँ)

मार्गफल शिक्षाएँ अपने नाम के अनुरूप ही उन शिक्षाओं का संकलन हैं जिनकी प्रतिपत्ति लक्ष्य विशेष न होकर मार्ग ही है। इसकी अवधारणा बुद्धवचन के चौथे आर्यसत्य से ली गई है। जिस प्रकार बोन के लिए जोग–छेन (अतियोग), ञीङ्–मा के लिए महामुद्रा, गेलुग के लिए लाम–रीम और कार्ग्युद के लिए लो–जोङ् शिक्षाएँ हैं, ठीक इसी प्रकार साक्या परम्परा में लाम–डे का स्थान है। लाम–डे का शाब्दिक अर्थ मार्गफल है। मार्गफल कहने से तात्पर्य यह है कि मार्ग ही फल है और इसके अतिरिक्त अलग से फल के विवेचना की आवश्यकता नहीं है। लाम–डे शिक्षाएँ नौवीं शताब्दी में भारतीय तन्त्र में स्थापित महासिद्ध विरूपाक्ष (तिब्बत में विरूपा) द्वारा प्रणीत हुई हैं। 10 वीं–11वीं शताब्दी में गयाधर और डोग–मी साक्या येशे द्वारा भारत से तिब्बत लाई गई। ध्यातव्य है कि लङ्–दर–मा द्वारा बौद्ध शिक्षाओं का क्षरण हुआ था और तिब्बती बौद्ध परम्परा को पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता थी।

तिब्बत में लाम–डे परम्परा के 12 उपसम्प्रदाय जाने गए हैं जिनमें प्रमुख आचार्य कुन्गा–यीङ्–पो की परम्परा प्रमुख है। तिब्बत, मंगोलिया और चीन तक फैले लाम–डे ग्रन्थ 30 भागों में उपलब्ध होते हैं। लाम–डे शिक्षाओं का उत्स मूल हेवज्रतन्त्र है। इसके अतिरिक्त लाम–डे ग्रन्थों में 18 ग्रन्थों का एक विशाल संग्रह है जिसका विशद अध्ययन साक्या भिक्षुओं के लिए अनिवार्य माना जाता है। सामूहिक रूप से इन ग्रन्थों के विषय निम्न हैं–

(1) प्रज्ञापारमिता
(2) संघ–विनय
(3) माध्यमक (आचार्य नागार्जुन द्वारा प्रणीत मध्यम मार्ग)
(4) अभिधर्म तथा तद्विषयक घटना क्रिया विज्ञान
(5) प्रमाण–न्याय इत्यादि

लाम–डे शिक्षाएँ तिब्बती बौद्ध धर्म में व्याप्त इसी अवधारणा के अनुसार ही हैं कि बौद्ध उपदेश थेरवाद परम्परा के हों अथवा महायान के, अथवा वे वज्रयान परम्परा के क्यों न हों, ये सभी भिन्न न होकर एक–दूसरे

के पूरक हैं और वह भी उत्तरोत्तर क्रम में। अर्थ यह हुआ कि साधना–पथ की प्रारम्भिक शिक्षाएँ हीनयान अथवा थेरवाद के अन्तर्गत हैं और इनकी सिद्धि करने के उपरान्त ही महायान में प्रवेश लेकर उच्चतर साधनाओं व शिक्षाओं पर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त होता है। इसी प्रकार महायान की शिक्षाएँ जब पूर्ण हो जाती है तब ही वज्रयान की शिक्षाओं में अभिषिक्त हुआ जा सकता है।

इस प्रकार लाम–डे शिक्षाएँ दो भागों में विभाजित हैं–
1. प्राथमिक शिक्षाएँ
2. मुख्य शिक्षाएँ

प्राथमिक शिक्षाओं के अन्तर्गत सभी मार्ग की साधनाओं को अपनाया जाता है। 'त्रिशरणगमन' से लेकर 'कार्य–कारण सिद्धान्त' की साधना इसका आरम्भ है। इससे उत्पन्न पुण्य फल को समस्त जीवों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया जाता है। तीन प्राथमिक शिक्षाएँ इस प्रकार हैं–
1. दुःख
2. अनित्यता और मानव जीवन की दुर्लभता
3. कार्य–कारण सिद्धान्त

उपरोक्त साधना को माया–दर्शन जिसे ऋद्धि[1] दर्शन भी कहा गया है। यह स्वप्न की भाँति होता है तथा इसमें अनूभूति सत्यता की भाँति होती है जैसे स्वप्न में स्वप्न, स्वप्न न होकर सत्य प्रतीत होता है। इस द्वैधता को हटाने को 'दर्शन निराकरण' कहा गया है। लाम–डे का दूसरा मुख्य भाग मुख्य शिक्षाएँ हैं। इन्हें ही भावनामयी प्रज्ञा का विषय कहा जा सकता है। मुख्य शिक्षाओं के दो भाग हैं–

1. सामान्य भावनामयी प्रज्ञा की साधनाएँ
2. असामान्य भावनामयी प्रज्ञा की साधनाएँ

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त दोनों साधनाएँ भी एक दूसरे की पूरक और उर्ध्वरेखीय प्रगति के क्रम में हैं। इसके पश्चात् शुद्ध–अन्तर्दृष्टि की साधनाओं का क्षेत्र आ जाता है जिसका आधार 'तन्त्र' है और इसे वज्रयान के अन्तर्गत रखा गया है।

लाम डे की तीन परम्पराएं
लाम–डे की साक्या परम्परा आगे चलकर तीन शाखाओं में विस्तारित हुई–
1. साक्या
2. ङोर
3. छर

1. साक्या–यह पूर्व से चली आ रही साक्या–गोङ्–मा–नाम–ङा अर्थात् उपर्युक्त वर्णित पाँच गुरु परम्पराएँ ही हैं जिनमें विभिन्न पीठें स्थापित हुई। कुछ प्रमुख गुरुओं के नाम हैं, डे–युल–क्ये–त्छल पीठ के त्वांग–छेन–राब– जम–सांग्ये–फेल (1449 ई.) सुप्रसिद्ध साक्या महाविहार में प्रशंसित गोरम–पा जिनकी 13 पुस्तकें उपलब्ध होती हैं। 1489ई. में जाम्–याङ–नाम–खा–टाशी ने दन्सा–उगमा–त्से–दोङ् की स्थापना की।

2. ङोर परम्परा के संस्थापक ङोर–छेन–कुंगा–साङ्–पो हैं जिनके चार ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन्होंने 1429 ई. में ङोर विहार की स्थापना की। मुस–छेन–खोरलो–दोम्बा से लेकर वर्तमान उपाध्यायों तक 69 महोपाध्याय ये सब विनय परम्परा वाले भिक्षु थे।

3. छर–पा परम्परा का प्रथम पीठ दा–टाङ्–मो–छे है। कालान्तर में फेन–युल का नालन्दा विहार इसका पीठ हुआ जिसकी स्थापना रोङ्–तोन–शे–चा–कुन–सीङ् द्वारा 1435 ई. में की गई।

नागार्जुन और आर्यदेव भारतीय षट् अंलकारों और दो श्रेष्ठ आचार्यों में गिने जाते हैं।[2] इसी प्रकार साक्या परम्परा में दो श्रेष्ठ आचार्य साक्या पण्डित और डो–गोन्–छोस् दृगेल–फाग–पा (आर्य जगन्नाथ धर्मनाथ) माना जाता है। इसकी सूत्र परम्परा में याग–ठुग–साङ्–ग्ये–पल, रोङ्–तोन् सेचा–कुत्सिंग, गुह्यमन्त्र की परम्परा में ङो–र्पा कुंगा–साङ्–पो और जोङ्–वा–कुंगा–नामग्यल हैं। विशिष्ट आचार्य के रूप में सम्मानित गोरम–पा सोनम–सेङ्गे और साक्या छोगदन् को सूत्र और तन्त्र दोनों में समान रूप से सम्मानित अधिकारी हैं।

तन्त्र

सामान्यतया शून्यता का जो स्वरूप माध्यमिकों की दार्शनिक व्याख्या में मिलता है वही व्याख्या तन्त्रों में भी है अन्यथा उच्छेद अथवा शाश्वत के लांछन का भय है। शून्यता की प्रविधि (साधना) के आधार पर ही सूत्र और तन्त्र में भेद पाया जाता है। इसके अतिरिक्त क्रियातन्त्र, चर्यातन्त्र, योगतन्त्र और अनुत्तरयोग तन्त्र दोनों में समान रूप से पाए जाते हैं।

त्रिस्तरीय लाम डे शिक्षाएं
एक अन्य प्रकार से लाम–डे शिक्षाएँ त्रिस्तरीय शिक्षाएँ मानी जाती हैं–
(क) प्राथमिक शिक्षाएँ– इनके तीन मुख्य भाग हैं जिन्हें त्रिदृष्टीयमार्ग कहते हैं। ये हैं–

1. आधारभूत दृष्टि 2. मार्ग दृष्टि 3. फल दृष्टि

(1) आधारभूत दृष्टि में आधार का तात्पर्य प्राणिमात्र से है। कर्म एवं क्लेश के कारण सभी प्राणियों की दृष्टि दोषपूर्ण होती है, जिसे साधारण दृष्टि कहा जाता है।
(2) मार्गदृष्टि–योगी और साधक जो मार्ग (बोधिपथ) में दीक्षित होते हैं उनके पास अनुभव की दृष्टि होती है जिसे मार्ग दृष्टि कहा जाता है।
(3) फल दृष्टि–सभी बुद्धों (तन्त्र में असंख्य बुद्ध होते हैं) को महान् आन्तरिक गुण और शुद्ध दृष्टि प्राप्त होती है। इस प्रकार त्रिदृष्टीय मार्ग का प्राथमिक भाग उपर्युक्त तीन दृष्टियों यथा– अशुद्ध, अनुभव और शुद्ध में विभाजित होता है।
विस्तृत विवेचन निम्न है–

आधारभूत, अशुद्ध आदि विशेषणों से विभूषित प्राथमिक स्तर की दृष्टि सभी प्राणियों के लिए होती है और इसे लाम–डे शिक्षाओं का मूल कह सकते हैं। इसका प्रारम्भ त्रिशरणगमन से होता है। यहीं से बौद्ध और बौद्धेतर धाराओं की भिन्नता प्रारम्भ हो जाती है।

इसके पश्चात् समाधि का प्रथम अंग प्रारम्भ होता है जो तीन उपवर्गों में विभाजित है–
1. त्रिशरणगमन और बोधिविचार का बीजारोपण
2. साधना के मुख्य भाग का प्रशिक्षण
3. गुणों का तर्पण
इसे और अधिक स्पष्ट रूप देने के लिए उपर्युक्त साधनाओं के साथ पाँच अन्य दार्शनिक बिन्दुओं को जोड़ा जा सकता है।
1. हेतु 2. वस्तु 3. मार्ग 4. लाभ 5. शरणागमन के नियम

प्रथम तीन बिन्दुओं को अर्थात् त्रिशरणगमन को भय, श्रद्धा और करुणा की अवधारणा से युक्त दृष्टि से देखा जाता है। वस्तु भी बुद्ध, धर्म और संघ तीन हैं। महायान में बुद्ध त्रिकाय से संयुक्त किसी भी प्राणी को कहा जाता है। धर्म का तात्पर्य बोधि–साक्षात्कार से सम्बन्धित शिक्षा के सूत्र हैं। संघ का अर्थ उन महान् बोधिसत्त्वों से लिया जाएगा जो बोधि की अच्युत अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। अतएव बुद्ध हमारे मार्गदर्शक, धर्म हमारा मार्ग और संघ हमारा आध्यात्मिक सहचर है। त्रिशरणगमन के लाभ अनन्त व असीम हैं। इससे प्राप्त होने वाले गुणों की यदि भौतिक रूप से गणना हो तो समस्त संसार का ऐश्वर्य भी इसके समक्ष नगण्य या तुच्छ है, यही लाम–डे शिक्षाओं में कहा गया है।

शरणागमन के नियम. इन नियमों को दो भागों में बाँटा गया है– साधारण और वैयक्तिक।
अब अशुद्ध दृष्टि का विवेचन– तीन प्राथमिक साधानाएं विवेचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है–
1. दुःख
2. अनित्यता और मानव–शरीर की दुर्लभता
3. कार्य–कारण का सिद्धान्त
अशुद्ध अथवा दोषपूर्ण दृष्टि निस्सरण के विकास में उपदिष्ट चार आर्यसत्यों से सम्बन्धित है।
1. दुःख का विवेचन– तीन प्रकार के दुःख शिक्षाओं में वर्णित हैं–दुःख–दुःखता, विपरिणाम दुःखता और संस्कार–दुःखता। प्रथम धर्मचक्रप्रवत्तन। चार आर्य सत्य
2. अनित्यता और मानव–पुनर्जन्म की दुर्लभता– द्वितीय प्राथमिक शिक्षाओं में दुर्लभ मानव–शरीर के प्राप्ति के बारे में कहा गया है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि कर्म और क्लेशावरणों के कारण जीव अशुद्ध दृष्टि ही प्राप्त कर सकता है। निराकरण के रूप पवित्र धर्म का अनुपालन ही मार्ग है। (दल जोर क्यी मी लुय पा) के अठारह बिन्दु। इसमें यह उल्लेखनीय है कि अनित्यता और दुर्लभ मानव जन्म की शिक्षा अलग अलग नहीं प्रत्युत लाम–डे में एक साथ दी जाती है।
3. कार्य–कारण का सिद्धान्त– तीसरा प्राथमिक सिद्धान्त कर्म से सम्बन्धित है। मनुष्य अकर्मा नहीं हो सकता। इसीलिए बुद्ध ने हमें उन कर्मों को करने का उपदेश दिया जिनके द्वारा हम बोधिपथ पर अग्रसर हो सके। हम सभी कर्मबन्ध से बंधे हैं, पर यह अनायास है, अकारण नहीं। इसका कारण अविद्यावश किए गए हमारे कर्म हैं। परन्तु बोधिपथ में दीक्षित होने के उपरान्त किए जाने वाले कर्म बुद्ध द्वारा निर्देशित और सायास होते हैं।

कार्य–कारण की शिक्षाओं को लाम–डे में दो भागों में बताया गया है–
1. अशुद्ध अथवा भ्रमपूर्ण दृष्टि संसार को स्वप्नवत् समझना
2. कार्मिक दृष्टि–इसके तीन प्रभाग हैं– गुणयुक्त कर्म (राग, द्वेष मोह से किए गए कर्म), गुणमुक्त कर्म और निरपेक्ष कर्म। अकुशल कर्मों से विरत किए गए कर्म निरपेक्ष कर्म होंगे। कर्म से तात्पर्य कायिक, मानसिक और वाचिक कर्म है।

अनुभव दृष्टि को हम भावनामयी दृष्टि भी कह सकते हैं। यहाँ से लाम–डे शिक्षाओं का दूसरा भाग प्रारम्भ होता है। भावनामयी दृष्टि को दो भागों में बाँटकर साधना की जाती है।

1. साधारण अनुभवजन्य भावनामयी दृष्टि। महायान की साधारण साधना में होती है। मैत्री, करुणा और बोधिस्वभाव से की गई साधना। बोधिचित्तोत्पाद की उत्पत्ति और बोधिसत्त्व पद की प्राप्ति इसी दृष्टि में गिने जाते हैं।
2. असाधारण भावनामयी दृष्टि। यह तन्त्र साधना में उत्पन्न होती है।

शुद्ध दृष्टि

यह लाम–डे शिक्षाओं का तीसरा और अन्तिम भाग है जो प्रकृतितः परमार्थिक दृष्टिकोण को प्राप्त करने के लिए है। अनेक तान्त्रिक धाराओं में इस शुद्ध दृष्टि को सहजात बीजभूत प्रज्ञा भी कहा गया है। सहजात से अभिप्राय मार्ग और फल का एक साथ उत्पन्न होना ही है। तात्पर्य यह हुआ कि फल अन्यत्र नहीं है, हमारे अन्दर ही है जो मार्ग है। दूसरे शब्दों में कहें तो फल कहीं बाहर से आकर मिलने वाला नहीं है, यह अन्तःभूत है। इसी कारण से बुद्ध–गोत्र[3] स्वभावतः और प्रकृतितः प्रत्येक मानव में है। हमें बोधि–प्राप्ति के लिए पूर्ण प्रयत्न करना है। अभ्यास के द्वारा प्रज्ञा और उपाय सभी ग्रहण अथवा दोषों का नाश कर देते हैं और हमें अन्ततोगत्वा फल की प्राप्ति करवाते हैं। इसके पश्चात् आन्तरिक प्रज्ञा का विकास होता है और शुद्ध दृष्टि प्राप्त हो जाती है। जिस प्रकार जागृत अवस्था में स्वप्न नहीं देखा जा सकता, ठीक उसी प्रकार मायायुक्त जागृत साधक अशुद्ध दृष्टि को नहीं प्राप्त हो सकता।

साक्या परम्परा, तन्त्र और लाम–डे शिक्षाएँ

(ख) पूर्व वर्णित लाम–डे शिक्षाओं के विवेचन में जिस त्रिस्तरीय दृष्टि पर आधारित साधनाओं की व्याख्या की गई है, वे प्राथमिक स्तर की हैं। इस प्राथमिक स्तर में ही विभिन्न स्तर पर शिक्षाओं, साधनाओं तथा ध्यान परम्पराओं का विकास होता है और इसके पश्चात् ही लाम–डे की मुख्यधारा मे अभिषिक्त होने की अर्हता प्राप्त होती है। यहाँ से प्राथमिक शिक्षा का अन्त हो जाता है, तन्त्र की दीक्षा प्रारम्भ होती है। लाम–डे की वास्तविक शिक्षा या साधना को ग्रहण करने के लिए अबतक प्राप्त की गई शिक्षाएँ साधक के शुद्धिकरण या पात्र होने की प्रक्रिया माना जाता है।

लाम–डे को स्वर्णिम शिक्षाएँ भी कहा गया है। सभी भिक्षु–भिक्षुणी इसके पात्र नहीं होते। यहाँ तक कि इसके अनुयायियों[4] की संख्या बढ़ाने पर भी विचार नहीं किया जाता। इसकी तुलना शेरनी के दूध को किसी सामान्य पात्र या किसी भी साधारण पात्र में न देने के रूपक से की गई है। बुद्ध की शिक्षाएं व निर्देशन अपने आप में सम्पूर्ण होती हैं, इसी प्रकार लाम–डे शिक्षाएँ सूत्र और तन्त्र दोनों मिलकर एक सम्पूर्ण निर्देश बनते हैं जो साक्षात् परम्परा में गुरु शिष्य को देता है। इस परम्परा को गुह्य (तिब्बती भाषा में साङ्–वा) अथवा सीमित रखने का कारण इसकी अनुचित व्याख्या हो जाने का भय है जिसमें अर्थ का अनर्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध में 11वीं शताब्दी के लाम–डे परम्परा के तिब्बती शिक्षक द्रोग–मी (डोग्–मी) से सम्बन्धित एक रोचक तथ्य मिलता है। डोग्–मी अपने सभी शिष्यों को शिक्षा देने के लिए तीन बार अनुरोध करने को कहते थे और प्रत्येक अनुरोध में स्वर्ण लाने को कहते थे। स्वर्ण लाने में विफल होने वाला शिष्य शिक्षा से वंचित हो जाता था। शनैः–शनैः शिष्यों की संख्या कम होती गई और अन्त में केवल एक ही शिष्य शेष रह गया। जब वह लाम–डे शिक्षा प्राप्त करने के लिए पारंगत पाया गया तब डोग–मी ने स्वर्ण लेना बन्द कर दिया। डोग–मी की पत्नी ने विरोध कर दिया और कारण पूछा। डोग–मी ने उत्तर दिया, "स्वर्णिम शिक्षाओं के लिए जितना स्वर्ण चाहिए वह प्राप्त हो चुका है। समस्त स्वर्ण योग्य अधिकारी को दिया जा चुका है।" तभी सबको पता चला कि स्वर्ण लाने की बाध्यता अगम्भीर व मात्र उत्सुकतावश आगन्तुकों को हतोत्साहित करने के लिए ही थी। आज भी शिक्षाओं की पूर्णता पर सांकेतिक रूप में गुरु को स्वर्ण देने की परम्परा कायम है।

लाम–डे साधनाएं हमें यह बताती हैं कि मार्ग ही फल है अतएव संसार में ही निर्वाण अन्तर्निहित है। संसार की वास्तविकता के बोध के बिना निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। यह ज्ञान जो लोकों में प्राणियों को अवबोधन होता है, अनुभवजन्य दृष्टि का साक्षात् करवाता है।

लाम–डे मुख्य तन्त्र बुद्ध–गोत्र विकसित करने की प्रक्रिया है। यह माना जाता है कि बुद्ध गोत्र सभी प्राणियों में सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। इसे हम बोधि का बीजरूप कह सकते हैं जिसमें पूर्ण वृक्ष बनने की सभी सम्भवानाएँ अन्तर्निहित होती हैं। लाम–डे शिक्षाओं में इसी को बुद्ध की प्रकृति कहा गया है। यह दो प्रकार की होती है– (1) प्रकृतितः बोधि प्रकृति (2) अर्जित बोधि प्रकृति।

शुद्ध दृष्टि– यह अशुद्ध दृष्टि और भावनामयी दृष्टि इन दोनों से अलग है। शुद्ध दृष्टि पथ अपनाने से अशुद्ध दृष्टि का पूर्णतया शुद्धिकरण हो जाता है। भावनामयी दृष्टि भी हमें श्रेष्ठ व्यक्तित्व–निर्माण में सदैव सहायक नहीं होती, वह साधकों को आकर्षित तो करती है, परन्तु यह शुद्ध दृष्टि ही है जिससे एक साधारण व्यक्ति एवं बोधि–प्राप्त साधक में भेद का ज्ञान हो पाता है। शुद्ध दृष्टि के अन्तर्गत साधक को प्राप्त समस्त शक्तियाँ एवं ऐश्वर्य उसके आस–पास को बोधिमय बना देती है। समस्त भौतिक ऐश्वर्यों (सुखावती आदि) की विवेचना में उलझने से वह तभी बच पाएगा जब उसे शुद्ध दृष्टि प्राप्त हो अन्यथा वह आनन्दोपभोग में निमग्न हो पदच्युत हो जाएगा।

एलेक्स वे–मैन की पुस्तक 'इंट्रोडक्शन टू बुद्धिस्ट तांत्रिक सिस्टम' में बौद्ध तान्त्रिक परम्पराओं में अभिषेक का पर्याप्त विवेचन दिया गया है। सभी परम्पराओं में अभिषेक का अर्थ प्रवेश से लिया गया है। इसके लिए साधक को विभिन्न अवस्थाओं से गुजरना होता है ताकि वह तन्त्र में प्रवेश–पूर्व अर्हताओं प्राप्त कर सके। साधना में उत्तम, मध्यम और साधारण आदि कई अवस्थाएं आती है। उत्तमावस्था साधक की सबसे उच्च अवस्था मानी गई है। लाम–डे के अन्तर्गत हेवज्र में अभिषेक उत्तमावस्था का प्रारम्भ होता है। योग्य गुरु से अभिषिक्त हो हेवज्र की साधना की जाती है। सभी उपस्कर एकत्रित कर मण्डालादि[5] का प्रतिष्ठापन किया जाता है। सामान्यतया गुरु अपने शिष्य के लिए अपने शरीर को मण्डल के स्थान पर प्रस्तुत करता है। दक्षता प्राप्त करने के उपरान्त शिष्य अपने गुरु के बिना भी स्वतन्त्र रूप से मण्डल की स्थापना कर सकता है। वास्तविक अभिषेक चार भागों में सम्पन्न किया जाता है–

1. प्रथम अभिषेक पात्र अभिषेक है। यहाँ पाँच बुद्धों, पाँच क्लेशों (लोभ, घृणा, अविद्या, द्वेष और क्रोध) इनका शुद्धिकरण किया जाता है।
2. द्वितीय अभिषेक गुह्य अभिषेक है। यहाँ खोपर में अमृत रखा जाता है जो अहंभाव का प्रतीक है। मन्त्रोच्चारण के साथ उस जल का सेवन किया जाता है और इसके साथ ही अहंभाव तिरोहित हो जाता है। यह एक अत्यन्त सशक्त तान्त्रिक क्रिया है जिसमें य, र, ल, व मिले होते हैं।
3. तृतीय अभिषेक पारमार्थिक प्रज्ञा और ज्ञान का है। उसी मानव खोपड़ी में स्थित अमृत का पान किया जाता है, पर अब यह बोधिसत्त्व अमृत अभिहित होता है और गुरु इसे बोधि से उत्पन्न कहता है। यब–युम की अवधारणा यहाँ से आरम्भ हो जाती है।
4. चतुर्थ और अन्तिम अभिषेक को वर्णनातीत प्रकृति का होने के कारण किसी नाम से अभिहित नहीं किया जाता प्रत्युत इसे चतुर्थ अभिषेक ही कहा जाता है। इससे श्वास–प्रश्वास का शुद्धिकरण होता है।

जो साधक उपर्युक्त हेवज्र अभिषेक प्राप्त करते हैं, वे सभी विस्तृत चित्त–विषयक शिक्षाओं और शून्यता विषयक शिक्षाओं को स्पष्ट एवं साक्षात् रूप से प्राप्त कर लेते हैं।

लाम–डे में फल का विवेचन

मार्ग को फल बतलाने वाली साधना पद्धति में फल का पृथक् विवेचन असामान्य है परन्तु तिब्बती बौद्ध परम्परा की इस शाखा में यह वर्तमान है। किसी भी उपदेश अथवा शिक्षापदक्रम और साधना विधि की अवधि सुनिश्चित करना कठिन है। कारण यह है कि गुरु और शिष्य की व्यक्तिगत आदान–प्रदान की क्षमताएँ इसका महत्त्वपूर्ण अवयव होती हैं। फिर भी लाम–डे को तीन वर्ष की अवधि में पूर्ण रखा गया है।[6] शिक्षा के एक भाग के पूर्ण होने के उपरान्त ही अगले भाग की शिक्षा देने का प्रावधान है। सामान्य शिक्षाएँ समूह में दी जाती हैं, परन्तु विशिष्ट साधना (साधना–विशेष) पद्धतियों का प्रशिक्षण व्यक्तिगत रूप से दिया जाता है।

लाम–डे शिक्षाओं का अधिकांश भाग निस्सरण से प्रारम्भ होता है और प्रमुख शिक्षाएँ इसी से सम्बन्धित रहती हैं। इसका एक अत्यन्त रोचक रूपक अन्धेरे कमरे में बैठे पतंगे और दूसरे कोने में प्रज्ज्वलित दीपक से दिया गया है। पतंगा दीए की लौ से आकर्षित होकर उसके निकट जाता है। उसे नहीं पता कि लौ की निकटता उसके अस्तित्व को समाप्त कर देगी। दीपक अपने अस्तित्व के लिए पतंगे पर निर्भर नहीं होता। इसी प्रकार सभी प्राणी रागादि क्लेशों से आकर्षित हो उनकी ओर दौड़ते हैं और अपने अस्तित्व को संकट में डाल देते हैं। यहाँ निस्सरण ही हमें दीपक के लौ के आकर्षण अथवा मोह से दूर रख सकता है और आध्यात्मिक जगत् में प्रगति दिला सकता है। वस्तुस्थिति यह है कि आजकल निस्सरण को कई भ्रामक अर्थों में प्रयोग कर लिया जाता है (जैसे सामान्य दान, सांसारिक वस्तुओं या वासनाओं का त्याग)। निस्सरण एक सुखद प्रक्रिया तो नहीं ही है। त्याग में वियोग अन्तर्निहित रहता है जो प्रकृति से ही कष्ट प्रदान करने वाला है, परन्तु अन्ततोगत्वा यह एक स्वतन्त्रता को जन्म देता है जो स्वभावरूपेण आध्यात्मिक है। यही स्वतन्त्रता एक विजय की अनुभूति करवाती है जो लाम–डे का प्रारम्भिक फल है।

बोधिचित्तोत्पाद की साधना के क्रम में संसार के समस्त जीवों के प्रति जिस मातृभाव का उदय होता है, वह करुणा और प्रेम से संयुक्त हो एक प्रकार की आसक्ति को जन्म देता है। यह आसक्ति सप्तपदीयबोधिचित्त की प्राप्ति के भाव से जुड़ी होती है और यह प्रकारान्तर से क्लेशों के उदय का कारण बन सकती है यदि साधक अप्रमाद साधना से संयोग विस्मृत कर दे। यहीं लाम–डे शिक्षाओं में निस्सरण की महत्ता का बोध होता है। उपेक्षा भावना इसी का एक अंग है। लाम–डे शिक्षाओं के अन्तर्गत परात्मसमता की साधना का भी प्रचलन है। इसके द्वारा क्लेशों का प्रहाण किया जाता है। इस प्रकार से परात्मसमता, साधना भी है और फल भी जिसके द्वारा हम अन्य प्राणियों के सुख–दुःख का साक्षात्कार कर सकते हैं। अहंभाव का तिरोहित होना लाम–डे शिक्षाओं की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जाएगी।

(ग) प्राथमिक और मुख्य शिक्षाओं के पश्चात् तृतीय स्तर पर लाम–डे शिक्षाएँ तन्त्र के स्तर पर होती हैं। इसलिए यहाँ साधक सभी जीवों को बुद्ध और बोधिसत्त्वों के रूप में देखता है जो शुद्ध दृष्टि का एक विकसित रूप है। यों यह अवस्था अनिर्वचनीय कही गई है, परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह महामुद्रा की अवस्था है जिसमें बोधि से साक्षात्कार हो चुका है।[7] इस अवस्था में साधक को असीमित शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कई

लाम–डे लामाओं को वर्तमान जीवन में ही इस अवस्था की प्राप्ति हुई है, जबकि कुछ लामाओं को जीवन समाप्ति के बाद अन्तराभव[8] (बार–दो) में। यहाँ तक कि लाम–डे के संस्थापक लामाओं मार–पा, मीला–रे–पा और डोग–मी को भी अन्तराभव में जाकर यह अवस्था प्राप्त हो सकी थी।

प्रोफेसर विजय कुमार सिंह,
अध्यक्ष,
चीनी और तिब्बती भाषा विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

---

1 जुन्डुल–क्यी कङ्–पा झी–चत्वारऋद्धिपादः page 1058a&59b, A Tibetan &English Dictionary with Sanskrit synonyms by Sarat Chandra Das, Published by Motilal Benarasi Das, 1970

2 तिब्बती परम्परा में इनके नाम हैं–लु डुब, फाग्–पा ल्हा, फाग्–पा थोग्–मेद, यीङ्–येन, छोग्–क्यी लड्–पो, छोय–क्यी डाग्–पा, योन तेन ओद्, शाक्या–ओद्।

3 Buddha nature- साक्या की लाम–डे शिक्षाओं में मार्ग को ही फल मानने के पश्चात् यह अवधारणा कि फल मार्ग में ही अन्तःभूत है, सभी साधक बुद्ध गोत्र के समझे गए हैं। यह मानना कि बुद्ध गोत्र स्वभावतः प्रत्येक मानव में ही है। इसे ही आंग्ल भाषा में Buddha Nature कहा गया है।

4 साक्षात् परम्परा

5 मण्डल का अर्थ देवता का घर है जहाँ उसका स्थापन किया गया हो।

6. Page 240, Lamdre Dawn of Enlightenment, Lama Choedak Yuthok, Gorum Publication Canberra, Australia, 1997.

7 साक्या परम्परा में महामुद्रा का तात्पर्य बोधि से साक्षात्कार ज्ञानातीत अवस्था से है।

8 यह वर्तमान जीवन की समाप्ति से लेकर पुनर्जन्म होने तक की अवस्था है जिसकी अधिकतम अवधि 49 दिन मानी गई है।